A R DIGITECH
International Journal Of Engineering, Education And Technology (ARDIJEET)
www.ardigitech.in ISSN 2320-883X, VOLUME 12 ISSUE 04 24/11/2024

भावनात्मक रचनाओं की साहित्य में भूमिका

डॉ. अवि सुखीजा, सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, ग्रामोत्थान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, संगरिया

परिचयात्मक शोध की भूमिका

किसी भी धर्म, जाति अथवा देश के सभ्य व्यक्तियों के विचार, वाणी एवं रहन–सहन का जो रूप होता है उस को हम संस्कृति कहते हैं हर राष्ट्र की अपनी संस्कृति होती है। जिससे उस राष्ट्र के समस्त संस्कारों का बोध होता हैं। जिनके आधार पर वह अपने समाजिक या सामूहिक आदर्शों का निर्माण करता है, यह विशिष्ट समुदाय धर्म जाति अथवा राष्ट्र की विशिष्टता प्रकट करते आदर्शों का निर्माण करता है, यह विशिष्ट समुदाय धर्म, जाति अथवा राष्ट्र की विशिष्टता प्रकट करते हैं।

समाज की प्रकृति या स्वभाव और आस्था या विश्वास की प्रेरक भावानाओं में प्रायः समान संस्कार रहते हैं। संभवतः इसी कारण संस्कृति की एक प्राचीन उक्ति में, किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन–व्यापारों, सामाजिक संबंधों और मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले तत्वों की समष्टि को संस्कृति कहा गया है। इस प्रकार मनुष्य को श्रेष्ठ साधनाओं और जाति–विशेष के आंतरिक भावों की अभिव्यंजना को संस्कृति समझना चाहिए।''

डॉ0 श्रीगोपीनाथ कविराज कहते है– ''प्रत्येक संस्कृति की एक विशिष्ट आत्मा है। यही उसका बीज स्वरूप है। बीज अविनश्वर है, अर्थात् प्रवाह रूप में नित्य है। वृक्ष शुष्क हो जाने पर भी जैसे उसका बीज रह जाता है और सुयोग प्राप्त होने पर फिर अंकुरित होता है, संस्कृति का बीज भी ऐसा ही होता है। जाति में यदि वैशिष्टय संरक्षित रहे तब तो वह जाति जीवित रहती है, उस समय भी बीज तो रहता ही है, परन्तु जाति का लोप हो जाने पर भी उसके बीज का नाश नहीं होता जाति का जीवन काल या स्वभाव–स्थिति कितने दिनों के लिए है? इस शंका के समाधान रूप में कहा जा सकता है कि जब तक बीज के विभक्त दो अंशों में मुख्य अंश वंश–परम्परा क्रम से गौणांश का विकार रहने पर भी अधिकृत रहता है, तब तक जाति का जीवन नष्ट नहीं होता। आचार्य कहते हैं कि यह विशिष्ट संस्कारों को अयुतसिद्ध संघात–मात्र है। प्रत्येक देश में जल, वायु, भूमि सूक्ष्म वातावरण आदि कारणों से एक विशिष्ट प्रकृति का विकास होता है। उस देश में दीर्घकाल अवस्थान करने के प्रभाव से उस पर देश– प्रकृति की छाप लग जाती है।''

संस्कृति के वरदहस्त से अनुप्राणित राष्ट्र निरन्तर प्रगति के पथ को प्रशस्त करते हैं। अतः संस्कृति के इतिहास को प्रस्तुत करने वाले तत्व निश्चय ही महान होते हैं। संस्कृति आन्तरिक वस्तु है। इसके अन्तर्गत मनुष्य के आचार–विचार, उसके जीवन मूल्य उसकी नैतिकता, सरकार आदर्श शिक्षा, धर्म, साहित्य और कला का समावेश होता है, अतः संस्कृति एक व्यापक तत्व है। निश्चय ही संस्कृति मानव की साधना की सर्वोत्तम परिणति है। इस सर्वोत्तम परिणति का ज्ञान इतिहास से होता है, अतः इतिहास एवं संस्कृति के अभेद संबंध है।'' भारत में जिस संस्कृति की अभिव्यक्ति हुई है जगत् के किसी और राष्ट्र से उसकी तुलना नहीं की जा सकती।

व्यष्टि के साथ समष्टि का तथा दूसरी तरफ सर्वातीत मूल सत्ता का इस प्रकार अद्भुत समन्वय और किसी राष्ट्र में नहीं दीखता। यदि किसी दिन भारतीय संस्कृति की ऐतिहासिक क्रम–धारा के अन्तराल में रहने वाले तत्वों का विश्लेषण सम्पन्न होगा, तो भारतीय संस्कृति की महिमा प्रस्फुटित होगी।

रामधारी सिंह दिनकर ने संस्कृति की परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त की है– पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक अभ्युदय के उपयुक्त देहन्द्रिया, मन, बुद्धि, अंहकारादि की भूषण भूत सम्यक् चेष्टाएँ एवं हलचलें ही संस्कृति है। वास्तव में देखा जाए तो संस्कृति जीवन का एक स्टाईल है, यह स्टाईल सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।

परिचयात्मक शोध के सोपान

अंग्रेजी में कहावत है कि सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है, संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है, मोटर, महल, सड़क, हवाई जहाज, पोशाक और अच्छा भोजन ये तथा इनके समान सारी अन्य स्थूल वस्तुएँ, संस्कृति नहीं,

सभ्यता के समान हैं। मगर पोशाक पहनने और भोजन करने में जो कला है वह संस्कृति की चीज है। इसी प्रकार मोटर, बनाने और उसका उपयोग करने, महलों के निर्माण में रुचि का परिचय देने और सड़कों तथा हवाई जहाजों की रचना में जो ज्ञान लगता है, उसे अर्जित करने में संस्कृति अपने को व्यक्त करती है।"

परिचयात्मक शोध का महत्त्व

सभ्यता संस्कृति का बाह्य आवरण मात्र होने के कारण उसकी नकल आसानी से की जा सकती है, पर संस्कृति की नहीं। संस्कार या संस्कृति असल में शरीर का नहीं आत्मा का गुण है और जबकि सभ्यता की सामग्रियों से हमारा सम्बन्ध शरीर के साथ ही छूट जाता है, तब भी हमारी संस्कृति का प्रभाव हमारी आत्मा के साथ जन्म जन्मान्तर तक चलता रहता है।"

प्राकृतिक विधान के अनुरूप संस्कार की हुई पद्धति ही संस्कृति है। उसी संस्कृति के किसी एक अंश को सभ्यता कहते हैं। संस्कृति अनुभव जन्य ज्ञान के और सभ्यता बुद्धिजन्य ज्ञान के आधार पर निर्भर है। अनुभव जन्य ज्ञान नित्य और बुद्धि जन्य परिवर्तनशील होने के कारण संस्कृति नित्य और सभ्यता परिवर्तनशील होती है। किसी देशकाल की सभ्यता किसी के लिए अहितकारी भी हो सकती है, किन्तु संस्कृति सर्वदेश, सर्वकाल में सभी के लिए सर्वथा हितकारी होती है। संस्कृति किसी की उपज नहीं, प्रत्युज खोज है। इसी कारण वह नित्य है। उसका निरादर पतन का मूल है और उसका आदर विकास का हेतु है।

संस्कृति का विचार साहित्य, कला, समाजशास्त्र, विज्ञान, नैतिकता आदि के ही रूपों में किया जा सकता है। सभ्यता शब्द समाकृति से बना है, जिसका अर्थ है सभा में बैठना या सभा में बैठने की योग्यता। इसी कारण सभ्यता सामाजिक आचार–विचार व्यवहार और सामाजिक कर्त्तव्यों पर जोर देती है। इसका सामाजिक उत्तरदायित्त्व, सामाजिक बन्धन या सामाजिक निर्देश भी रहता हैं इसका संबंध नागरिकता से भी है। सभ्यता का अर्थ होता है, विशिष्ट प्रकार का बौद्धिक विकास, उच्च नैतिक विचार या भौतिक सभ्यता। संस्कृति बौद्धिक विकास का पर्यायवाची है और सभ्यता भौतिक उन्नति की। सभ्यता बाहरी क्रियात्मक स्वरूप है। संस्कृति एक अन्दर की वस्तु है जिसका नाता मूल से होता है। अतः संस्कृति को आत्मा और सभ्यता को शरीर कहा जा सकता है। एक में चमक–दमक दिखती है तो दूसरे में शान्ति। एक में नितान्त एकान्तिकता है तो दूसरी में सामाजिकता।

परिचयात्मक शोध के उद्देश्य

1. संस्कृति एक अनन्त अनवरत प्रवाह है इस प्रवाह में श्रेष्ठ की ही सत्ता है।
2. संस्कृति मानव जीवन के अन्तः बाह्य दोनों पक्षों को स्पर्श करती है। और जीवन का निर्माण करती है।
3. जो इस संसार में सर्वश्रेष्ठ है वही संस्कृति के विराट सत्य का अंग बनता है।
4. संस्कृति को सभ्यता का परिष्कृत रूप मानते है, यही संस्कृति की मानव के रास्ते क खोज करती है।
5. सभ्यता के पथ पर ही संस्कृति का जन्म हुआ है जो आगे चलकर नये विचारों को जन्म देती है।

परिचयात्मक शोध का निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि प्राप्त परम्पराएँ ही संस्कृति हैं। इस परिभाषा को हम यदि और स्पष्ट करें तो हम कह सकते हैं कि व्यक्ति और समाज परिष्करण, उदात्तीकरण अथवा उसके सत्य, शिव, सुन्दर स्वरूप निर्माण के लिये उस व्यक्ति और समाज को उसके अस्तित्व में आने से और आज तक जो परम्पराएँ प्राप्त होती हैं उसी का नाम संस्कृति है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि हम भीतर और बाहर से जो कुछ हैं, वही हमारी संस्कृति का स्वरूप है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शास्त्री, देवेन्द्र मुनि : साहित्य और संस्कृति, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1970

2. शुक्ल, रामचन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1952: चिन्तामणि (भाग एक), निबन्ध संग्रह, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, 1948
3. डॉ० शुक्ल, सुरेश चन्द डॉ० सक्सेना, कृष्णमोहन पं० प्रतापनारायणा मिश्र जीवन और साहित्य, प्रथम संस्करण, युगवासी प्रकाशन, कानपुर, 1964 भारतेन्दु युगीन नाट्य साहित्य में लोकतत्व, 42, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद, 1977
4. सिंह, नत्थन : गद्यकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1959
5. सिंह, नामवर : साहित्य का स्वरूप, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1958
6. डॉ० सिंह, नैपाल : उत्तरी भारत के सांस्कृतिक विकास में सन्तों का योगदान, नवयुग प्रेस, महावीरगंज, अलीगढ़, 1986